विज्ञान की कहानियां

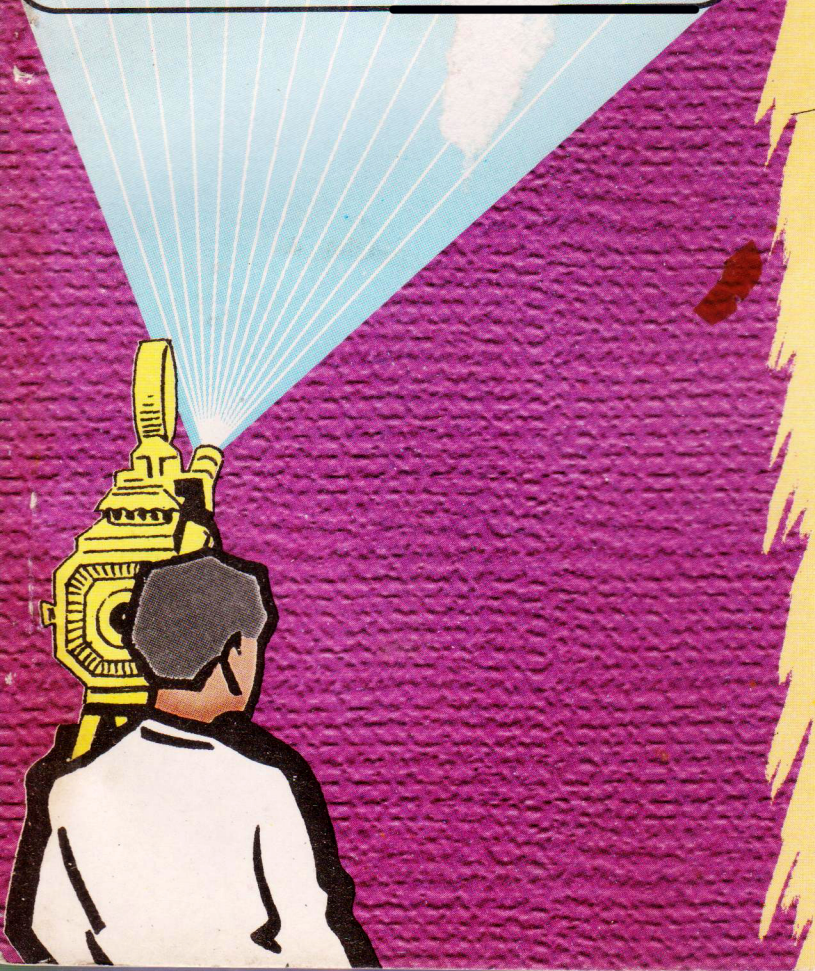

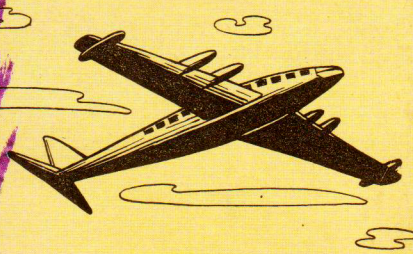

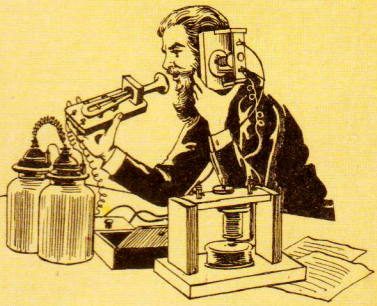

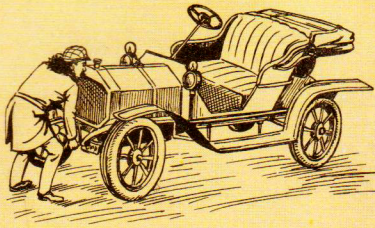

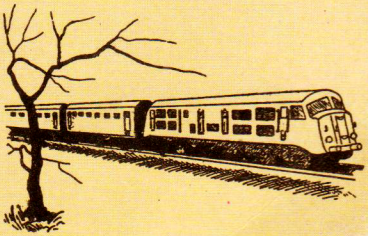

भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत

विज्ञान की कहानियां

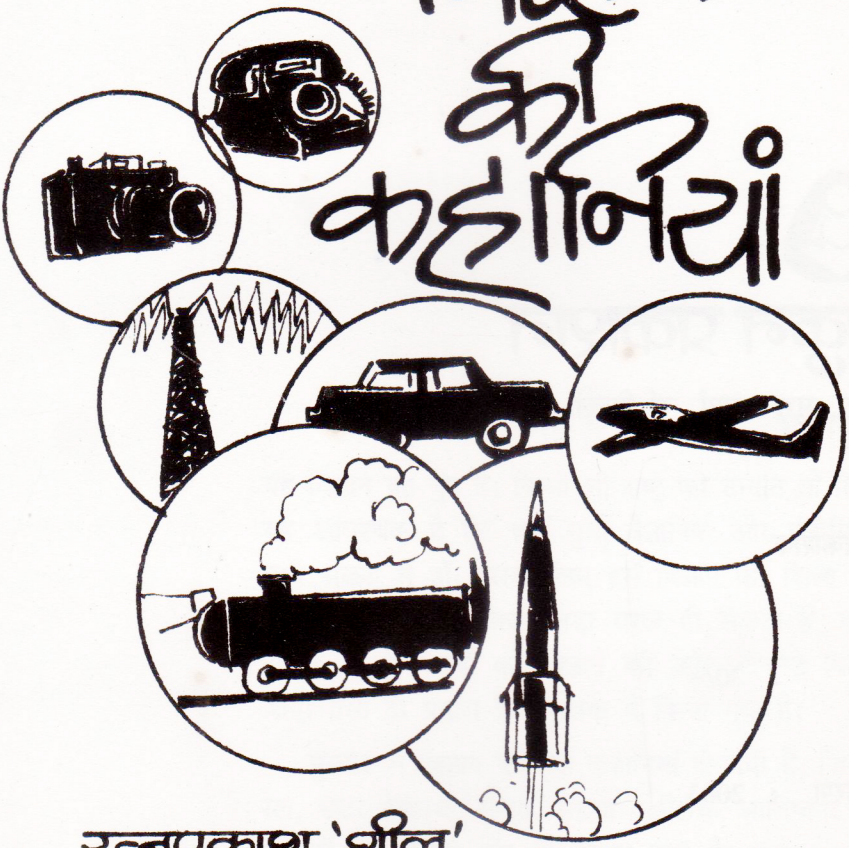

रत्नप्रकाश 'शील'

शकुन प्रकाशन
3625, सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002

© प्रकाशक

मूल्य : 30/-

संस्करण : 2003

मुद्रक : शकुन प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

VIGAN KI KAHANI : by Ratan Prakash 'Sheel'
SHAKUN PRAKASHAN 3625, Subhash Marg, New Delhi-110002

भूमिका

यह विज्ञान का युग है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि वहां युवा वैज्ञानिक और इंजीनियर बड़ी संख्या में हों। इसके लिए हमें विज्ञान की शिक्षा पर बल देना होगा। यह काम बड़ा सरल हो सकता है, यदि आरंभ से ही बच्चों को विज्ञान की ओर आकृष्ट किया जाए। ऐसा ही प्रयास इस पुस्तक में किया गया है।

पुस्तक में विज्ञान की दस कहानियां दी गयी हैं, जिनमें रेल, मोटर, जहाज, कैमरा, रेडियो आदि के आविष्कार के बारे में बड़े रोचक ढंग से बताया गया है। पुस्तक बड़ी उपयोगी है, ऐसा मेरा विश्वास है।

- कमलापति त्रिपाठी

कहां क्या है?

1. कुगनाट का भूत : रेलगाड़ी 5
2. ढेमलर की करामात : मोटर 9
3. समुद्री दैत्य : पानी का जहाज 12
4. उड़नेवाला राक्षस : वायुयान 17
5. चांद का डाकिया : राकेट 22
6. जादू की डिबिया : कैमरा 26
7. नाचती-गाती तसवीरें : सिनेमा 28
8. बेल की देन : टेलीफोन 31
9. जिसमें आवाज बंद है : ग्रामोफोन 34
10. हवा का जादू : वायरलेस, रेडियो 37

कुनमाट का भूत : रेलगाड़ी

एक पादरी था। एक दिन शाम को वह किसी काम से कहीं जा रहा था। सूरज छिप गया था। अंधेरा फैलने लगा था। अचानक पादरी ने देखा, सामने से एक बड़ा-सा भूत उसकी ओर दौड़ा आ रहा है। उसका रंग बिल्कुल काला है। शक्ल-सूरत बड़ी विचित्र है।

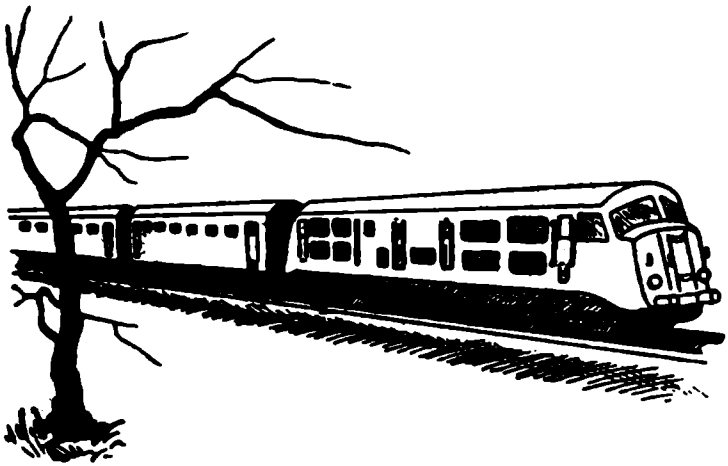

यह देख बेचारा पादरी डर गया। वह सड़क पर लगे एक पेड़ की ओट में खड़ा हो गया। थोड़ी देर में वह भूत उसके सामने से निकला। पादरी ने देखा-लोहे जैसी धातु का एक बड़ा-सा बेलन शोर मचाता भागा जा रहा है। न उसे कोई खींच रहा है, न कोई धकेल रहा है।

बस, पादरी यह करिश्मा देखकर डर गया। डर के मारे उसके प्राण ही निकल गए। कुछ दूर जाकर उस भूत ने दो-चार व्यक्तियों को अपनी चपेट में ले लिया। फिर एक मकान की दीवार से वह टकराया और रुक गया।

यह विचित्र घटना लगभग सन् 1800 की है। लोहे का वह भूत आज भी

की धरती पर चली। जेम्स के सिद्धांतों पर ही इस रेलगाड़ी का इंजन बना था। बनानेवाला था जार्ज स्टीफेंसन। वह गाड़ी के आगे लाल झंडी लेकर चलता था, ताकि कुगनाट के इंजन की भांति उसके इंजन से भी कोई मर न जाए।

उस समय की रेलों की गति बहुत कम होती थी। स्टीफेंसन ने पहली रेलगाड़ी में आवश्यक सुधार करके दूसरी रेल बनाई। वह एक घंटे में केवल चौदह कि. मी. चलती थी। इतनी कम गति होने पर भी लोग उसमें बैठकर यात्रा करने को तसरते थे। बड़े-बड़े लोग ही उसमें बैठ सकते थे।

उस समय रेलगाड़ियों की गति इतनी कम होने का एक खास कारण था। वे टमटम, बग्घी या तांगों की भांति धरती पर ही चलती थीं। लोहे की पटरियां उस समय नहीं बिछाई जाती थीं। लोहे की पटरियां बिछाने का महत्व अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में समझा गया। इससे रेलगाड़ियों की गति चौदह कि.मी. से एकदम बाईस कि.मी. प्रति घंटा हो गयी। यह गति उन दिनों काफी बड़ी बात मानी गयी थी।

पिछली शताब्दी से लेकर आज तक रेलगाड़ियों में लगातार सुधार होते रहे हैं। आज आमतौर से उसकी गति 70 कि.मी. से लेकर 200 कि.मी. प्रति घंटा है। इसके साथ ही साथ अब रेलगड़ियां पहले से अधिक लंबी होती हैं। पहले की अपेक्षा इनमें भार भी अधिक ढोया जा सकता है। हजारों यात्री मजे से यात्रा करते हैं।

आज की रेलों में पानी और बिजली के अलावा यात्रियों की अन्य सुख-सुविधाओं का भी ध्यान रखा जाता है। खतरे के समय गाड़ी को रोकने का भी प्रबंध होता है। उसके आगे आगे किसी को चलने की आवश्यकता नहीं होती। किंतु पहले की रेलों में ये सारी बातें नहीं थीं। उस समय न तो रेलों में बिजली के बल्व और पंखे होते थे, न पानी के नल। न बैठने के लिए सीटें होती थीं और

न खतरे के समय गाड़ी को रोकने का प्रबंध।

सामान लाने ले जाने और यात्रा करने के लिए रेलगाड़ी आज का सबसे बड़ा साधन है। इसकी सहायता से न केवल मनुष्य, बल्कि पशु-पक्षी और हल्का-भारी सामान भी कम समय और कम खर्च में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाया जा सकता है।

हमारे देश में रेल की पटरियों का जाल-सा बिछा है। मुंबई में तो एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिए बिजली से चलनेवाली रेलगाड़ियां हैं जिन्हें 'लोकल' (स्थानीय) ट्रेन कहते हैं। अब तो पूरे देश में सभी मुख्य मार्गों पर बिजली के इंजिन इस्तेमाल होते हैं। भाप के इन्जनों का स्थान डीजल इन्जनों ने ले लिया है।

रेलगाड़ियां दो प्रकार की होती हैं-पहली, यात्री गाड़ी (पैसेंजर ट्रेन) होती है। उसमें मनुष्य यात्रा करते हैं। दूसरी, मालगाड़ी (गुड्स ट्रेन) होती है। मालगाड़ी में केवल सामान ढोया जाता है।

विस्तार की दृष्टि से भारतीय रेलवे का संसार में दूसरा और एशिया में पहला स्थान है। भारत में सबसे पहली रेलगाड़ी 16 अप्रैल, 1853 को मुंबई और थाना के बीच चली थी। तब से लेकर आज तक हमारे देश ने रेल-यातायात में बहुत प्रगति की है। भारत में लगभग डेढ लाख किलोमीटर लंबी रेलवे लाइनें हैं। लाखों यात्री प्रतिदिन इन रेलों में सफर करते हैं।

विदेशों की तरह आज भारत में भी जमीन के अन्दर और ऊपर तीव्र गति से चलने वाली ट्रेने हैं जिन्हें हम मैट्रो रेल कहते हैं।

डेमलर की करामात : मोटर

सन् 1786 में मर्डक नाम के एक इंजीनियर ने तीन पहियों वाली एक गाड़ी बनाई। पहले-पहल उसने उसे अपने कमरे में चलाकर देखा। उसे डर था कि कहीं गाड़ी न चली तो लोग उसकी हंसी उड़ाएंगे। या फिर, वह किसी को चोट पहुंचाकर उसके लिए सिरदर्द न बन जाए।

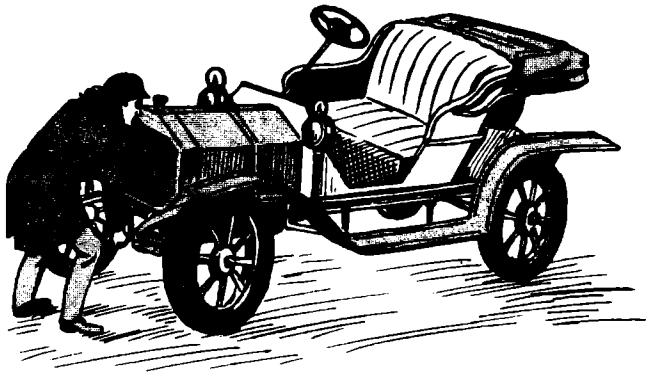

वास्तव में वह समय ही ऐसा था। उस समय लोग कल-पुर्जों की बजाय पूजा-पाठ और जंतर-मंतर पर अधिक विश्वास करते थे।

खैर, मर्डक की गाड़ी कमरे में संतोषजनक ढंग से चली। फिर उसने सोचा कि वह उसे कहीं बाहर सड़क पर चलाकर देखे।

एक अंधेरी रात को वह अपनी गाड़ी उठाकर चुपके से सड़क पर लाया। गाड़ी हिली ही थी कि दुर्भाग्यवश उसका पाला भी एक पादरी से पड़ा। गाड़ी को देखकर पादरी समझा कि उसने साक्षात् शैतान के दर्शन कर लिए हैं। मामला तूल पकड़े, इससे पहले ही बेचारे मर्डक को अपनी गाड़ी उठाकर ताक में रखनी पड़ी।

मर्डक की वह गाड़ी स्प्रिट से चलती थी। पेट्रोल से चलनेवाली सबसे पहली मोटर सन् 1900 में इंग्लैंड में बनी। उस गाड़ी के आगे भी एक व्यक्ति को लाल

झंडी लेकर चलना पड़ता था, ताकि कोई चपेट में न आ जाए।

मोटरकार के असली जन्मदाता का नाम 'ढेमलर' है। उस समय कई इंजीनियर महीनों काम करके एकाध मोटर बना पाते थे, फिर भी उसके आविष्कार से शौकीन मिजाज और काम-काजी लोगों को बड़ी राहत मिली। इसके लिए न पटरियां बिछाना आवश्यक था, न बड़ा इंजन लगवाना। न बॉयलर में पानी भरकर उसे गर्म करने के लिए भट्टी में कोयला जलाना होता था। बस, थोड़े से पेट्रोल से सारा काम हो जाता था। एक हल्की चिनगारी से पेट्रोल भड़काया जाता है। उस भड़क के दबाव से गाड़ी के पहिए घूमकर उसे आगे ले जाते थे।

रेलगाड़ी की तरह शुरू शुरू में मोटरों की गति भी बहुत कम थी। आप आज शायद उस दृश्य की कल्पना करके हंसेगे, जब कोई धनी-मानी मोटर में बैठकर कहीं जाता था। एक व्यक्ति लंबा सा टोप लगाए उसकी गाड़ी के आगे आगे अपना घोड़ा दौड़ाता था। लाल झंडी हिलाता जाता था। उस समय तक सीटी या हार्न की बात किसी को सूझी ही न थी।

अगली शताब्दी में मोटरकार में सैकड़ों परिवर्तन हुए हैं। 15 कि.मी. प्रति घंटे की चाल से चलने वाली मोटर आज चार सौ किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से दौड़ सकती है। पक्की सड़क हो या कच्ची सड़क, धूल हो या रेत-सब पर मोटरकारें चल सकती हैं। और तो और, आज पानी और हवा में चलने वाली मोटरकारों का आविष्कार भी हो चुका है।

यद्यपि रेलगाड़ी ने यातायात के साधनों को एक जबरदस्त मोड़ दिया था, किंतु मोटरकार उससे भी अधिक लाभदायक सिद्ध हुई।

जहां रेलें नहीं जा सकतीं, मोटरों ने वहां पहुंचना आसान कर दिया। पहाड़ों की चोटियों पर, जंगली इलाकों में, रेतीले मैदानों में सब जगह मोटरें जा सकती हैं, ट्रक जा सकते हैं। 'डक' नाम की मोटरगाड़ी तो जल-थल दोनों ही पर चल

सकती है। पचास से भी अधिक यात्रियों को लेकर चलने वाली मोटर को बस कहते हैं। आम जनता बसों में ही सफर करती है।

रेलगाड़ी के लिए पटरी जरूरी है। वह वहीं तक जाएगी, जहां तक पटरियां बिछी हों। किंतु मोटर के सामने या बाधा नहीं है। उसे आप छोटी गली से निकालिए। बाजार में दौड़ाइए। कहीं भी ले जाइए।

सुख-सुविधा की दृष्टि से भी आजकल की मोटरें बहुत अच्छी हैं। ऐसी मोटरकारें भी बनने लगी हैं जो सर्दी के दिनों में गरम और गरमी के दिनों में ठंडी रहती हैं। इनमें न रेलगाड़ी की भांति शोर होता है और न ये धुआं ही छोड़ती हैं। 'बुलेट-प्रूफ' मोटरकारें भी बनने लगी है। इन पर बंदूक या पिस्तौल की गोली का असर नहीं होता।

पहले मोटर केवल राजा-महाराजा या रईस लोग ही खरीद सकते थे। अब तो यह दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तु बनती जा रही है। अमेरिका जैसे देश में तो हर तीन आदमियों के पीछे दो मोटरें हैं। भारत में भी मोटर कारों की भरमार हो गई है।

आजादी के पूर्व हमारे देश में मोटरकारें बाहर से मंगाई जाती थीं, किंतु अब इनका निर्माण यहीं होने लगा है।

पेट्रोल की कमी को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि कार बनानेवाले ऐसे अन्य तरीके खोजें, जिनसे पेट्रोल की मदद के बिना ही कारें दौड़ा करें। इस ओर ध्यान दिया जा रहा है और इंजीनियर लोग शीघ्र ही इसका विकल्प ढूंढ़ निकालेंगे।

पानी का जहाज

पानी पर यात्रा मनुष्य काफी पहले से करता आया है। पाषाणकाल में आदमी पत्थरों से बने औजार और हथियार काम में लाता था। वह पत्थर की गुफाओं में रहता था। उस समय भी वह लकड़ी के टुकड़ों पर बैठकर पानी में सफर किया करता था।

जैसे जैसे वह सभ्य बनता गया, पानी पर बहने वाले लकड़ी के टुकड़ों को उसने नाव की शक्ल देनी आरंभ की।

जब नाव बन गयी तो उसे तेजी के साथ आगे बढ़ाने के लिए मनुष्य ने पतवार का आविष्कार किया। पाल बनाए। पतवारों और पालों ने पानी के सफर को बहुत अच्छा और कम समय में तय हो जाने वाला बना दिया।

इन्हीं पाल वाली नौकाओं में बैठकर हमारे पूर्वजों ने दूर दूर तक यात्राएं कीं। वे जावा-सुमात्रा तक व्यापार किया करते थे।

जब भाप के इंजन का आविष्कार हुआ और दुनिया ने उसके बारे में सुना तो इंग्लैंड के कुछ नाविक जेम्स वाट के पास पहुंचे। जेम्स वाट ने ही भाप का इंजन बनाया था। उन्होंने जेम्स वाट से प्रार्थना की कि वह उनकी मदद करे। वे चाहते थे कि जेम्स वाट उनकी नावों के लिए भी भाप से चलने वाला एक इंजन तैयार कर दे, ताकि उन्हें पतवार न चलानी पड़े। इंजन लगाने से नाव की चाल भी तेज हो जाएगी। मगर जेम्स वाट ने कहा कि वह ऐसा नहीं कर सकता। पहले वह रेलगाड़ी का इंजन बनाएगा।

उसकी इस बात से नाविक निराश नहीं हुए। उन्होंने दूसरे नौजवान इंजीनियरों

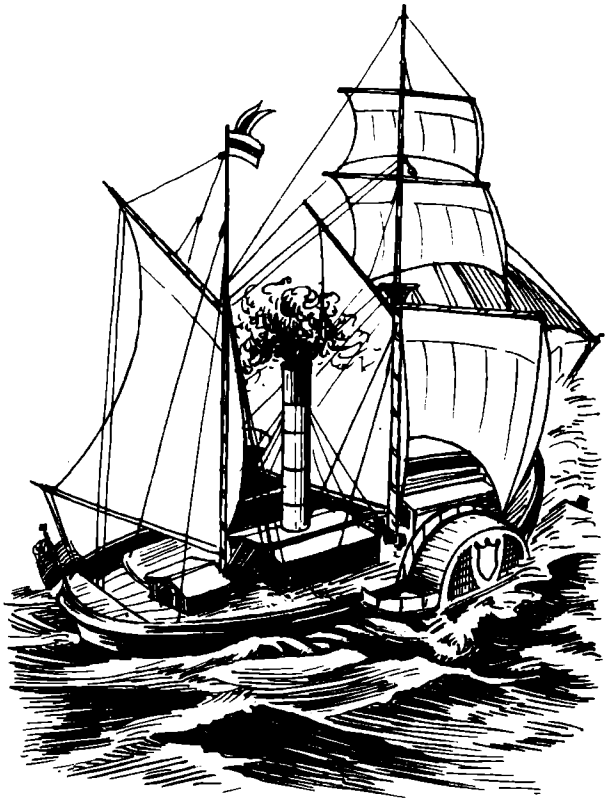

नाव में पहली बार भाप का इंजन लगाया गया

को इस काम के लिए उकसाया। इन्हीं कोशिशों से अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस के डेनिस पेपिन ने एक इंजन बनाया। मगर किस्मत ने उसका साथ नहीं दिया। अमेरिका निवासी जान फिच ने उसके काम को आगे बढ़ाया। भाप का नया इंजन बना। पहली बार लोगों ने भाप से चलनेवाली पानी के जहाज में बैठकर यात्रा की।

उस समय का दृश्य बड़ा मजेदार था। लोग जोश और आश्चर्य में भर कर फिच के जहाज पर बैठ तो गए, किंतु जब वे समुद्र में पहुंचे तो मारे भय के उनके होश गुम हो गए। वे जोर जोर से ईश्वर को पुकारने लगे।

जहाज का पूरा इंजन लगभग उन्नीसवीं शताब्दी में बना था। उसे जेम्स फुल्टन ने बनाया था। मगर उस समय का इंजन और उसका बॉयलर दोनों इतने भारी थे कि जहाज न तो तेज दौड़ सकता था और न आसानी से वश में रखा जा सकता था।

धीरे धीरे उनको हल्का बनाया गया। इंजनों में सुधार होते गए। एक दिन वह भी आया जब दस कि.मी. प्रति घंटा दौड़ने वाला जहाज 100 कि.मी. प्रति घंटे की गति से दौड़ने लगा।

उस समय के जहाजों में और आज के जहाजों में बहुत अंतर है। उस समय भाप से चलनेवाले जहाज अधिक दूर की यात्रा नहीं कर सकते थे। आजकल के जहाजों की तरह उनमें सुख-सुविधाओं का भी इंतजाम नहीं था।

आज के जहाजों को तो चलता-फिरता शहर ही कहना अधिक ठीक रहेगा। उनमें आपको ठंडे-गर्म पानी के नल, मकान, दूकानें, बाजार, बाग-बगीचे, खेलने के मैदान, होटल, डाकघर, बैंक, सिनेमा, थियेटर, स्कूल, अस्पताल आदि सभी कुछ मिलेगा। एक साथ हजारों आदमी इसमें यात्रा कर सकते हैं। अब तुम स्वयं सोच सकते हो कि आजकल का पानी का जहाज कितना बड़ा होता होगा!

इतने बड़े जहाज का भार भी हजारों टन होता है, लेकिन क्या मजाल कि वह डूब जाए या उसकी चाल में कुछ फर्क आ जाए। फिर भी समय का कुछ भरोसा नहीं होता। आखिर समुद्र ही होता है। तूफानों में फंसकर, समुद्र के विशालकाय जलचरों की टक्कर से या समुद्री चट्टानों से टकराकर इन जहाजों के डूबने का खतरा रहता है। ऐसे समय के लिए प्रत्येक जहाज में बहुत-सी छोटी छोटी नौकाओं का प्रबंध रहता है। इन नौकाओं को 'लाइफ-बोट' कहते हैं। जहाज के डूबने का खतरा होते ही ये नौकाएं समुद्र में डाल दी जाती हैं। यात्रियों को उन पर उतार दिया जाता है। यदि ऐसा न किया जाए तो सभी यात्री जहाज के साथ

समुद्र में डूब जाएं।

वैसे पानी के प्रत्येक जहाज में खतरे की सूचना देने वाला 'सायरन' होता है। उसकी आवाज सुनकर आसपास के सारे जहाज उसकी सहायता को पहुंच जाते हैं। खतरे के समय निकट के बंदरगाह को सूचना भेजने के लिए जहाजों पर 'वायरलेस' का प्रबंध भी होता है।

आज पानी के जहाज से कहीं अधिक तेज चलनेवाले वायुयानों का निर्माण हो चुका है। लेकिन पानी के जहाज का महत्व तनिक भी कम नहीं हो सका है। वायुयान से यात्रा करने वाले अपने साथ अधिक सामान नहीं ले जा सकते, न ही व्यापारिक सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर काफी मात्रा में और कम किराए में भेजा जा सकता है। पानी के जहाज में ऐसी कोई रुकावट नहीं है। उस पर जहाज के वजन के बराबर सामान लादा जा सकता है। कम किराए में एक स्थान से दूसरे स्थान पर सामान भेजा जा सकता है।

पानी के जहाज के बाहरी ढांचे पर चारों ओर एक लाइन बनी होती है। जब समान भरा जहाज इस लाइन तक पानी में डूब जाता है। तो सामान भरना बंद कर दिया जाता है। यदि जहाज इस लाइन से अधिक पानी में डूब जाता है तो फिर वह बाहर नहीं निकल पाता। वह समुद्र की तली में बैठ जाता है।

पानी के जहाज कई प्रकार के होते हैं-एक मालवाही जहाज होते हैं। वे केवल माल ढोने के काम में आते हैं और बहुत मजबूत होते हैं।

दूसरे जहाज यात्री जहाज होते हैं। उनमें मनुष्य यात्रा करते हैं। ये जहाज सब सुख-सुविधाओं से भरपूर होते हैं।

तीसरे जहाज युद्ध के काम आनेवाले युद्धपोत होते हैं। इन पर तोपें लगी रहती हैं। ये फौलाद से बने होते हैं। इन्हें लड़ाई के सभी हथियारों से लैस रखा जाता

है। ऐसे युद्धपोत भी होते हैं जिन पर ये लड़ाकू हवाई जहाज उड़ान भर सकते हैं और उतर भी सकते हैं। हमारे देश का 'विक्रांत' युद्धपोत ऐसा ही जहाज था। अब तो उस से भी अधिक विकसित युद्धपोत मौजूद हैं।

पानी के जहाज जहां से छूटते और खड़े होते हैं, उसे 'बंदरगाह' कहते हैं। हमारे देश के प्रमुख बंदरगाहों के नाम हैं-कोलकाता, कांडला, कोचीन, मुंबई, चेन्नई और विशाखापत्तनम्।

हमारे देश में पानी के जहाज एक सरकारी संस्था 'हिंदुस्तान शिपायार्ड' द्वारा बनाए जाते हैं।

आसमान छूते वायुयान

मीलों की यात्रा मिनटों में तय करने वाला वायुयान जब आकाश में उड़ता है, तो लगता है जैसे कोई बड़ा गिद्ध तेजी से जा रहा हो। वायुयान के मार्ग में न पहाड़ की रुकावट है, न नदी-नालों और समुद्र की। यात्रा हजारों किलोमीटर की हो या कुछ किलोमीटर की, आनंद से कुछ ही देर में समाप्त हो जाती है। यात्री न ऊबता है, न उसे थकान होती है और न उसका समय ही बरबाद होता है।

मनुष्य की सदा से यह इच्छा रही है कि वह पक्षी की तरह आकाश में उड़े। पंद्रहवीं सदी में इटली के एक युवक विंकी ने बनावटी पंखों की सहायता से आकाश में उड़ने की एक योजना बनाई। किंतु उसकी अकाल मृत्यु हो गयी।

विंकी के पश्चात् बहुत से उत्साही युवकों ने कागज, लकड़ी और कपड़े के पंखों की सहायता से आकाश में उड़ने की कोशिश की। किंतु असफल रहे। लोग उनको पागल कहकर हंसी उड़ाते रहे।

अचानक एक दिन बड़ी मजेदार घटना घटी। फ्रांस के किसी शहर में दो भाई रहते थे। सरदी के एक दिन वे दोनों आग के पास बैठे हाथ ताप रहे थे। आग

को तेज करने के लिए एक भाई ने उसमें कुछ कागज डाल दिए। कागज तो जल गए, मगर उनके जले टुकड़े धुएं के साथ ऊपर उड़ गए। यह देखकर उनके दिमाग में एक नयी बात आई। उन्होंने कागज और कपड़े का एक बहुत बड़ा थैला बनाया। उसका मुंह नीचे करके उसमें बहुत-सा धुआं भरा और छोड़ दिया।

थैला आकाश में उड़ गया। धुआं हवा से हल्का होता है। इसीलिए थैला आकाश में उड़ा था। किंतु लोगों ने उन दोनों भाइयों को जादूगर समझ लिया। कुछ समय बाद धुएं से भरे गुब्बारों में वे दोनों भाई उड़े भी। इस प्रकार आकाश की यात्रा आरंभ हुई। उन दोनों भाइयों का नाम जोसेफ और एंटोनी था। यह बात सन् 1782 की है।

उन्होंने कागज के थैले में धुआं भरा

उन दोनों ने फ्रांस के राजा-रानी के सामने भी उड़ने वाले थैले का करिश्मा दिखाया। इसके बाद रोजियर तथा आयरलेंड्स संसार की सबसे पहली आकाश यात्रा पर रवाना हुए। वह 21 नवंबर, सन् 1783 का दिन था। हजारों व्यक्ति बेचैनी के साथ खड़े हुए थैले को आकाश में उड़ता देख रहे थे। उड़ान सफल रही। कई बार तो ऐसा लगा कि थैला अब गिरा, अब गिरा। किन्तु वह पच्चीस मिनट तक आकाश में रहा और आठ कि.मी. उड़ा।

लगभग उन्हीं दिनों हाइड्रोजन गैस का आविष्कार हुआ। हाइड्रोजन गैस हवा से हलकी होती है। यदि इस गैस को गुब्बारे में भर कर छोड़ दिया जाए तो वह उड़ने लगता है। हाइड्रोजन गैस ने आकाश में उड़नेवालों को एक नयी राह दिखाई।

कई लोगों ने बड़े बड़े गुब्बारे बनाए। उनमें हाइड्रोजन गैस भरी। उन गैस भरे गुब्बारों से लटककर वे लोग आकाश में उड़ने की कोशिशें करने लगे।

मगर इन गुब्बारों के साथ भी वही हुआ जो भाप से चलनेवाले इंजन के साथ हुआ था। लोग उन्हें उड़ता देखते ही मारे डर के घरों में घुस जाते थे।

हाइड्रोजन गैस का सबसे पहला वायुयान जैपलिन ने बनाया। जैपलिन जर्मन वैज्ञानिक था। उसके वायुयान में बने एक खोल में हाइड्रोजन गैस भर दी जाती थी जिससे हलका होकर वायुयान आकाश में उड़ जाता था। उसे हवा के रुख के साथ साथ उड़ाते थे। उस वायुयान का नाम भी जैपलिन था। उसमें कई सौ व्यक्ति एक साथ बैठ सकते थे।

किन्तु हाइड्रोजन गैस आग बहुत जल्दी पकड़ती है। इसी कारण वायुयान को बराबर खतरा बना रहता था। अतः कुछ दिनों बाद एक दूसरी गैस 'हिलियम' को काम में लाया जाने लगा। हिलियम, हाइड्रोजन गैस की ही भाँति हलकी होती है और आग नहीं पकड़ती।

भाप के इंजन का आविष्कार होने के बाद लोगों का ध्यान उस ओर गया। समय ने पलटा खाया। सन् 1852 में भाप से उड़ने वाले हवाई जहाज का जन्म हुआ। उसे एक फ्रांसीसी इंजीनियर हेनरी ने बनाया था। उसकी गति आठ कि.मी. प्रति घंटा थी।

आजकल तो वायुयान आवाज की गति से भी कहीं अधिक तेज उड़ते हैं। जितनी देर में हमारी आवाज पचास मीटर की दूरी पर खड़े किसी दूसरे आदमी तक पहुंचेगी, उससे भी पहले आज का वायुयान वहां तक पहुंच जाएगा। हजारों मील की दूरी आज के वायुयान के लिए केवल कुछ घंटों की बात है। आप सवेरे का नाश्ता मुंबई में कीजिए और दोपहर का खाना वहां से पांच हजार कि.मी. दूर मास्को में खाइए। दिल्ली से मुंबई लगभग तेरह सो कि.मी. दूर है। वायुयान से वहां

लगभग दो घंटे में पहुंचा जा सकता है।

पानी के जहाज की भांति वायुयान भी कई प्रकार के होते हैं। मोटे तौर पर उन्हें तीन भागों में बांटा जा सकता है। एक तो यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के काम में आते हैं। बोइंग, काइंस्टेलेशन आदि इसी प्रकार के विमान हैं।

दूसरे विमान माल ढोने और डाक ले जाने के काम आते हैं।

तीसरे प्रकार के वायुयान लड़ाकू विमान होते हैं जो शत्रुओं से देश की रक्षा करते हैं। इनमें नैट, जेट, मिग, सुपरसानिक, हाक, जगुआर आदि भी हैं।

यदि सच पूछा जाए तो वायुयान ने आज की दुनिया को बहुत छोटा कर दिया है। जिन दुर्गम स्थलों में मनुष्य के पैर कभी नहीं पड़े, वहां भी वायुयान के द्वारा जा पाना अत्यंत सरल हो गया है। इसके अलावा वायुयान ने बाढ़, आग और खतरे के समय आवश्यकता पड़ने पर मनुष्य की जो सेवा की है, वह कभी नहीं भुलाई जा सकती।

स्वतंत्र होने के बाद हमारे देश में भी वायुयानों का निर्माण होने लगा है। देश में बना पहला वायुयान 'सुव्रत' है। हमारे देश में वायुयान का निर्माण 'हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट' नाम की सरकारी संस्था करती है।

यद्यपि वायुयानों में लगातार सुधार हुए हैं, यात्रियों के लिए उनमें सारी सुविधाएं जुटा दी गयी हैं; लेकिन वायुयान हर जगह न तो उतर सकता है, न उड़ान भर सकता है। उसके उड़ने और उतरने के लिए विशेष अड्डे बनाए जाते हैं।

हां, एक छोटा वायुयान अवश्य बनाया गया है, जो जहां चाहे उतर सकता है, और कहीं से भी उड़ सकता है। उसे आप अपने मकान की छत पर उतार लें।

वहीं से उड़ा लें। उड़ाने के लिए वायुयान की भांति दौड़ने की भी आवश्यकता नहीं। वायुयान के इस बच्चे को 'हैलीकोप्टर' कहते हैं।

हैलीकोप्टर में प्राय: चार-छह व्यक्तियों से अधिक नहीं बैठ सकते। यह अक्सर बाढ़ वाले इलाकों को देखने तथा ऐसे स्थानों पर सामान आदि गिराने के काम आता है, जहां वायुयान से जाना या तो खतरे से खाली नहीं होता या उसके उतारने का प्रबंध नहीं होता।

हैलीकोप्टर से आपदा में फंसे मनुष्यों को भी बचाया जाता है। बाढ़ के समय हैलीकोप्टर उसमें घिरे लोगों को बचाने या सामान गिराने के काम आते हैं। इनसे खेतों की देखभाल भी की जाती है और फसल पर डी.डी.टी. आदि कीटाणुनाशक दवाओं को छिड़काव भी किया जाता है।

बीसवीं शताब्दी में ऐसे हवाई जहाज भी बन गए हैं जिनमें पांच सौ तक मुसाफिर एक साथ यात्रा कर सकते हैं। तेज रफ्तार से चलने के कारण पूरा विश्व नजदीक आ गया हैं। इन वायुयानों में सभी प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध रहती हैं। आने वाले समय में और अधिक गति के वायुयान बनाने में इन्जीनीयर्स दिन रात काम में जुटे हैं।

चांद का डाकिया : राकेट

एक गुब्बारा लो। उसको अच्छी तरह फुलाओ। फिर एकदम उसे छोड़ दो। गुब्बारा दो-तीन सेकंड तक हवा में नाचता रहेगा। जब उसके अंदर भरी हवा खत्म हो जाएगी तो वह धरती पर गिर पड़ेगा।

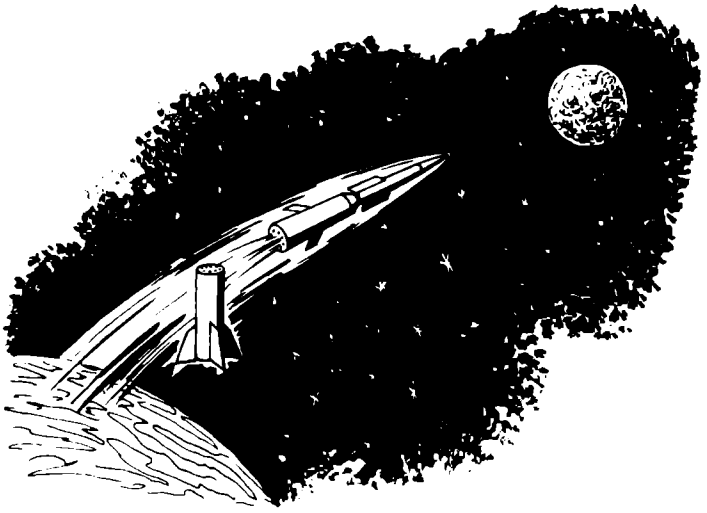

इसका कारण यह है कि छोड़ देने पर, गुब्बारे में भरी हवा उससे एकदम बाहर निकलती है। हवा का यह दबाव गुब्बारे को पीछे की ओर ढकेलता है और वह नाचता-सा मालूम होता है।

दबाव के इसी सिद्धांत पर कई प्रकार की आतिशबाजियां बनाई जाती हैं। 'चक्कर' आग लगाए जाने पर क्यों घूमता है? 'राकेट' आग लगाए जाने पर सीधा आकाश में क्यों उड़ जाता है? इन दोनों प्रश्नों का उत्तर भी यही है। जलाए जाने पर इन दोनों के मुंह से बारूद में लगी आग की लपटें तेजी के साथ बाहर की ओर निकलती हैं। इस क्रिया में बेहद दबाव पैदा होता है। चक्कर गोल मुड़ा होने के कारण घूमने लगता है। राकेट सीधा होने के कारण आकाश में उड़ जाता है।

ये दोनों आतिशबाजियां बहुत दिनों से छोड़ी जाती रही हैं। किन्तु उन्नीसवी सदी तक किसी को भी इनका महत्व ज्ञात न था।

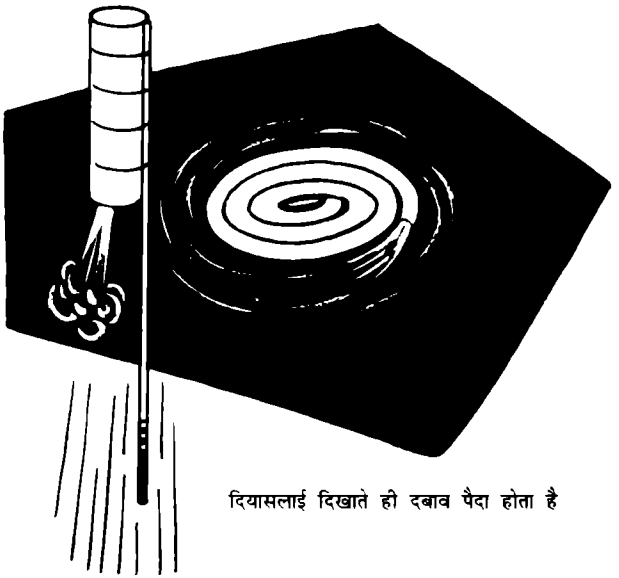

दियासलाई दिखाते ही दबाव पैदा होता है

उस समय के कई लेखकों ने आकाश में चमकने वाले तारों और ग्रहों के बारे में कहानियां की बहुत-सी पुस्तकें लिखीं। वे सब पुस्तकें इंजीनियरों को वहां तक पहुंचने के लिए उकसाती रहती थीं।

आकाश में लाखों किलोमीटर लंबे सफर को वायुयान तय नहीं कर सकता था। धरती के सबसे पास चंद्रमा है। उसकी दूरी भी लगभग चार लाख किलोमीटर है। यह दूरी कैसे पार हो, सब इसी उधेड़बुन में लगे थे।

सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि ऐसा इंजन कैसे बने जो इतनी दूरी को कम समय में पार कर ले। यदि एक हजार किलोमीटर प्रति घंटे की चाल से चांद की ओर चला जाए तो कहीं भी रुके बिना चालीस दिन में वहां तक पहुंचा जा सकता है। फिर मार्ग की कठिनाइयां भी आगे आएंगी। वे लोग जानते थे कि हवा धरती से कुछ ही किलोमीटर तक ऐसी है जिसमें सांस लिया जा सकता है। बाकी सारी हवाई पट्टी बहुत हलकी हवा से बनी है। उसमें न सांस ली जा सकती है, न शरीर के बाहरी दबाव पर नियंत्रण रखा जा सकता है। इसके साथ और भी बहुत-सी परेशानियां थीं।

इस बारे में 'राकेट' से काम लेने की बात सन् 1940 में जर्मनी ने सोची। वहां के वैज्ञानिक धातु के बड़े-बड़े बेलनों में बारूद आदि विस्फोटक पदार्थ भर देते थे। फिर उनके सिरों पर बम फिट कर देते थे। बेलनों में भरे विस्फोटक पदार्थों को भड़काकर वे 'राकेट' को मनचाहे स्थान की ओर छोड़ देते थे। जर्मनी ने इन राकेटों की सहायता से द्वितीय महायुद्ध में इंग्लैंड पर बम बरसाए थे।

आकाश की उड़ान पर सबसे पहला राकेट अमेरिका ने छोड़ा जो लगभग 183 किलोमीटर ऊंचा गया। उसके कुछ वर्ष बाद सन् 1949 में दूसरा अमेरिकन राकेट आकाश में लगभ 387 किलोमीटर ऊंचा गया।

धीरे धीरे राकेटों में सुधार होते गए। अच्छे अच्छे ईंधन काम में लाए गए। उनमें बेहद सफलताएं भी मिलीं। आज का राकेट तो कुछ ही मिनटों में हजारों किलोमीटर ऊपर आकाश में पहुंच जाता है।

राकेट के चलाए जाने का सिद्धांत वही है जो दिवाली पर छोड़े जाने वाले राकेट का होता है। अंतर केवल इतना होता है कि पटाखा 'राकेट' साधारण किस्म की बारूद से चलता है और आकाश की उड़ान करने वाला राकेट विशेष प्रकार से बनाए गए ईंधन के जलने से चलता है।

आजकल इन राकेटों का उपयोग तरह-तरह के कामों में किया जाता है। इनकी सहायता से अमेरिका और रूस ने अपने अपने 'अपोलो' और 'सोयूज' यान चांद में उतारे। अनेक 'उपग्रहों' को दूर दूर के ग्रहों तक भेजा। वे ग्रह हमारी धरती से लाखों किलोमीटर दूर हैं। ये यान धातु से बने एक तरह के घर जैसे होते हैं, जिनमें तरह तरह की मशीनें होती हैं। घर को ऐसा बनाया जाता है, जिससे उसमें बैठा मनुष्य या जानवर आकाश की सभी बाधाओं को सह सके। फिर उस घर को बारी बारी से चलने वाले कई राकेटों की मदद से आकाश में भेज दिया जाता है। वह घर धरती के या अन्य ग्रह के चारों ओर घूमने लगता है और आकाश के बारे में

सभी जानकारी धरती पर भेजता रहता है। इसी तरह से चांद पर 'अंतरिक्ष स्टेशन' भेजा गया। उससे कुछ लोग 'राकेट' द्वारा चांद पर उतरे। अब तो उपग्रह धरती के संचार साधन भी बन गए हैं। उनकी सहायता से दूर दूर संदेश भी भेजे जाने लगे हैं।

राकेटों की सहायता से हजारों किलोमीटर दूर के स्थान पर पलक झपकते ही बम गिराए जा सकते हैं। दूर दूर डाक और सहायता के लिए चीजें पहुंचाई जा सकती हैं।

तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि इतना उपयोगी और तेज चलने वाला राकेट अपना सारा काम आप करता है। उसमें न कोई ड्राइवर होता है और न वायुयान की तरह से इंजन। आप जहां सामान भेजेंगे, वहां उसे पहुंचाकर वह नीचे गिरकर नष्ट हो जाएगा। अब तो ऐसे राकेट भी बन गए हैं जो निश्चित स्थान पर जाकर लौट आते हैं। इन राकेटों में मानव भी जाता है और सकुशल धरती पर वापिस आ जाता है।

हूबहू तसवीर खींचता कैमरा

चौदहवीं-पद्रहवीं शताब्दी की चित्रकला बहुत श्रेष्ठ समझी जाती है, लेकिन उस समय के चित्रकारों को चित्र बनाने में महीनों लग जाते थे। यदि किसी आदमी को अपना चित्र बनवाना होता था तो उसे चित्रकार के सामने उस समय तक बैठना पड़ता था जब तक चित्र पूरा न बन जाए। इस तरह चित्र बनवाने में पैसा भी बहुत खर्च होता था।

बारहवीं सदी में एक अरब देश के वैज्ञानिक ने प्रकाश और छाया के सिद्धांतों पर कैमरे का एक नक्शा तैयार किया। मगर वह बेचारा उसे बना नहीं सका। उसके तीन सौ पचास वर्ष बाद कैमरा बनाया गया। वह कैमरा क्या था, एक भद्दा-सा डिब्बा था। उसकी तली में वस्तुओं की बहुत ही धुंधली तसवीर बनती थी। वह तसवीर भी कुछ देर तक ही रहती थी।

पद्रहवीं सदी से लेकर अठारहवीं सदी तक कैमरे के लिए बड़े बड़े दिमाग लगे, किन्तु हाथ कुछ न लगा। आवश्यकता किसी ऐसी चीज की थी, जिस पर तसवीर बने और बनी ही रहे।

ऐसी चीज सन् 1822 में हाथ लगी। पहला सफल फोटो तैयार करने वाला व्यक्ति एक फ्रांसीसी था। उसका नाम न्येप्स था। अपने उस फोटो से न्येप्स इतना खुश हुआ कि उसने अपने मित्रों को एक महीने तक दावतें दीं।

उस समय का फोटो यदि आज देखा जाए तो कोई भी नाक-भौं सिकोड़े बिना न रहेगा। किन्तु उस समय के लिए वह फोटो ही बहुत बड़ी चीज थी। न्येप्स को उस फोटो को बनाने में कई घंटे लगे थे।

शुरू शुरू में फोटो उतारने के लिए प्लास्टिक की-सी रील नहीं होती थी। उस

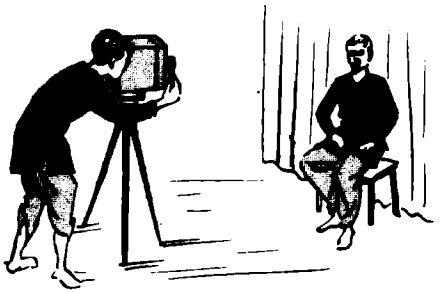

इसके बाद शुरू के कैमरे का जन्म हुआ

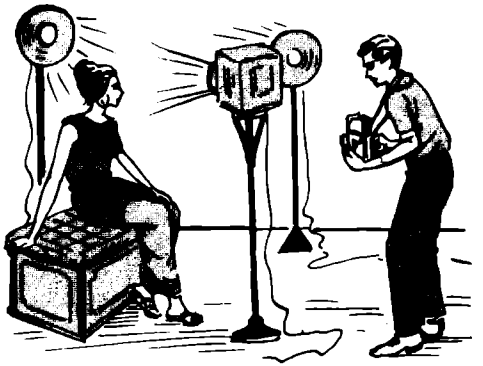

आज कैमरा तसवीर लेने का बेजोड़ साधन बन गया है

समय फोटो को धातु की छोटी-छोटी चादरों पर उतारते थे। उसके कई वर्ष पश्चात् कागज की मसाला लगी रील पर फोटो उतारने का तरीका अपनाया गया। यह तरीका भी पसंद नहीं किया गया। कुछ वर्ष पश्चात् ईस्टमैन नाम के एक अमेरिकन ने प्लास्टिक जैसी आर-पार दिखाई देने वाली फिल्म बनाई। उस फिल्म को फोटो खींचने के काम में लाया जाने लगा। ऐसी ही फिल्म आजकल काम में लाई जाती है।

कैमरे का मुख्य अंग एक गोल शीशा होता है, जिसे 'लैंस' या 'ताल' कहते हैं। ताल से होकर ही वस्तु की छाया अंदर चढ़ी फिल्म पर पड़ती है। उस फिल्म पर एक विशेष प्रकार का मसाला लगा होता है। उस मसाले के जिस भाग पर प्रकाश पड़ता है, वह भाग काला हो जाता है। चूंकि ताल के सिवाय अन्य कहीं से भी कैमरे के अंदर प्रकाश नहीं आ पाता, इसलिए सामने की वस्तु का सफेद-काला चित्र कैमरे की फिल्म पर बन जाता है।

फोटो खींचने के बाद अंधेरे कमरे में, फिल्म को कैमरे से निकालकर मसालों में धो लेते हैं। धो लेने से उस पर प्रकाश का और प्रभाव नहीं पड़ता। धुली हुई फिल्म को 'निगेटिव' कहते हैं। इस निगेटिव से जितने चाहे फोटो बना सकते हैं।

अब तो ऐसी फिल्में बनने लगी हैं, जिनसे रंगीन चित्र बनाए जाते हैं।

नाचती-गाती तसवीरें : सिनेमा

तुमने बाजार में 'बच्चों का सिनेमा' बिकता देखा होगा। वह एक प्रकार का खिलौना होता है। प्लास्टिक से बने इस खिलौने के एक सिरे पर गोल चक्कर लगा होता है। उसमें फिल्म के कई टुकड़े लगे होते हैं। इस चक्कर को घुमा घुमाकर बच्चे दूसरे सिरे पर लगे शीशे में से फिल्मों को देखते हैं।

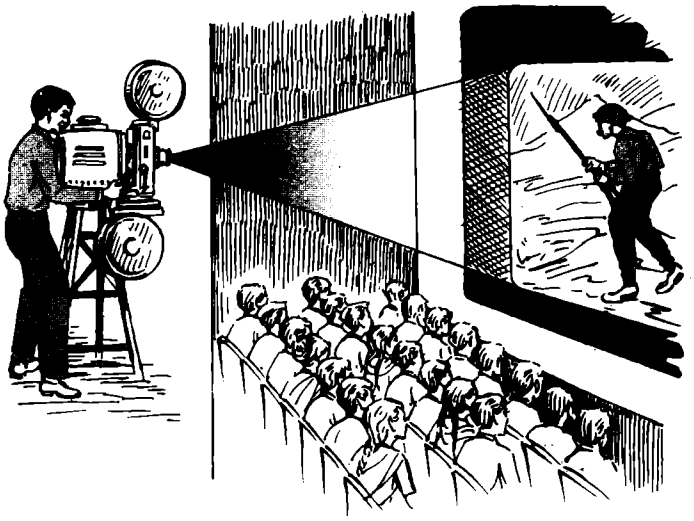

तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि यह खिलौना ही आज के सिनेमा का जन्मदाता है। आज से लगभग दो सौ वर्ष पहले इस खिलौने का बड़ा प्रचार था। उस समय सिनेमा जैसी कोई चीज न थी। लोगों को यह विश्वास न होता था कि चलता-फिरता सिनेमा भी हो सकता है। उस समय कैमरे का तो आविष्कार हुआ नहीं था। तसवीरें खिलौने के घूमने वाले भाग पर गोलाई में बनी होती थीं। जब चक्कर घूमता

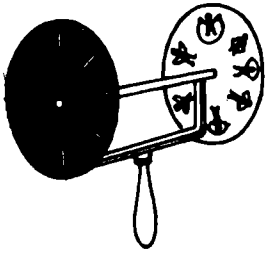

था तो उस समय बच्चे तो बच्चे, बूढ़े तक उस मजेदार चलते-फिरते दृश्य को देखकर खुशी से झूम उठते थे।

अठारहवीं सदी के अंत में जब कैमरे के लिए पारदर्शक फिल्म का आविष्कार हो गया, तब एडीसन ने एक नयी बात सोची। उसने सोचा कि इस प्रकार के खिलौनों पर कुछ ही तसवीरें आ सकती हैं। यदि ये तसवीरें बढ़ा दी जाएं तो देर तक मनोरंजन हो सकता है।

बस, उसने कैमरे की फिल्मों के बनाने वाले ईस्टमैन को पत्र लिखा कि वह उसके लिए फिल्म की कई लंबी पट्टियां तैयार कर दे। एडीसन को शीघ्र ही फिल्म मिल गयी।

एडीसन ने अपने घर के एक कमरे में अपने कुछ मित्रों को एकत्र किया। फिल्म कैमरे में लगी और वहां हुई पार्टी के सारे फोटो क्रमवार ले लिए। एडीसन का कैमरा सारे समय चलता रहा।

फिर उसने फिल्म को सावधानी के साथ धोया। इस प्रकार बने निगेटिव का पॉजीटिव भी फिल्म पर ही बनाया। जब फिल्म तैयार हो गयी तो उसने तेज प्रकाश की सहायता से उसकी छाया को एक सफेद कपड़े पर डाला।

उसके सारे मित्र यह देखकर चकित रह गए कि उनकी जीती-जागती तसवीरें सामने पर्दे पर थिरक रही हैं।

उस समय एक तसवीर के बाद दूसरी तसवीर तो आती थी। आवाज का प्रबंध नहीं था। लोग चलती-फिरती तसवीरें पर्दे पर देखा करते थे और एक व्यक्ति भौंपू से उनके बारे में बताता जाता था।

धीरे धीरे दुनिया का ध्यान अन्य मनोरंजनों से हटकर सिनेमा की ओर गया। उस समय थियेटर, मुर्गों और कबूतरों की लड़ाई, घोड़ों और मोटरों की दौड़े,

नाचना-गाना आदि ही लोगों के मनोरंजन के साधन थे।

जनता ने जैसे-जैसे सिनेमा को अपनाना शुरू किया, इसमें सुधार होते गए। फिल्म बनाने के लिए अच्छे से अच्छे स्टूडियो तैयार किए गए। लोगों को अभिनय करना सिखाया गया। वेशभूषा आदि में नये नये प्रयोग हुए।

इसी बीच ग्रामोफोन का आविष्कार हुआ। आवाज को लहरों की शक्ल में बांधा जाने लगा। एक दिन उसे भी फिल्म में भरकर सिनेमा की फिल्म से जोड़ दिया गया। जब पहली बोलने वाली फिल्म लोगों ने देखी तो उनकी खुशी का कोई ठिकाना न रहा।

आज सिनेमा हमारे मनोरंजन का सबसे सस्ता और अच्छा साधन है। हमारे जीवन पर जितनी छाप सिनेमा की पड़ती है, उतनी अन्य किसी मनोरंजन की नहीं। सिनेमा का उपयोग मनोरंजन के अलावा लोगों को पढ़ाने, उन्हें देश-विदेश की अच्छी अच्छी बातें बताने, चित्र के माध्यम से खबर दिखाने, विज्ञापन और प्रचार करने के लिए भी किया जाता है।

कुछ वर्ष पहले तक सिनेमा की फिल्में केवल काली-सफेद ही बनती थीं, किंतु अब रंगीन फिल्में बनने लगी हैं। हमारे देश में अब ज्यादातर रंगीन फिल्में ही बनती हैं। पहले उनको रंगीन बनाने के लिए विदेश भेजना पड़ता था।

सिनेमा की फिल्में हमारे देश में मुख्यत: मुंबई, कोलकाता और चैन्नई में बनती हैं। हमारे देश की कई फिल्मों को संसार की सबसे अच्छी फिल्म माना जा चुका है। उन फिल्मों को पुरस्कार भी मिल चुके हैं।

टनन–टनन–टन टेलीफोन

आज से ढाई हजार वर्ष पहले एक यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने कहा था कि जब कोई चीज हवा से टकराती है, तब आवाज पैदा होती है।

सदियों तक लोगों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। उन्नीसवीं सदी में जब रेल, मोटर और सिनेमा का आविष्कार हुआ तो वैज्ञानिकों ने आवाज के बारे में सोचना शुरू किया।

आवाज़ कान से सुनी जाती है। वैज्ञानिकों ने कान की बाहरी और भीतरी बनावट देखी। उसी तरह की मशीनें बनाकर प्रयोग किए। इन सारी बातों का नतीजा यह निकला कि अलेक्जेंडर ग्राहम बेल नामक एक अंग्रेज ने विचित्र प्रकार की एक मशीन बनायी। बेल बहुत दिनों तक अपने बंद कमरे में उस मशीन में सुधार करता रहा। एक चोंगा वह मुंह के सामने रखता और दूसरा अपने कान से लगाकर बार बार कहता–'हलो हलो!'

काफी दिनों तक मेहनत करने के बाद वह एक ऐसी मशीन बनाने में सफल हो गया, जो उसकी आवाज को थोड़ी दूर तक ले जाती थी।

जिस दिन बेल की यह मशीन बनकर तैयार हुई, वह उसके लिए बहुत खुशी का दिन था। उसने अपने सहायक को दूसरे कमरे में बिठाया। उस कमरे में भी एक वैसी ही मशीन रखी थी।

ठीक समय पर बेल ने अपने कमरे में रखी मशीन के बोलने वाले भाग से दूसरे कमरे के लिए आवाज भेजनी शुरू की। बेल की आवाज दूसरे कमरे में रखी मशीन से जब उसके सहायक ने सुनी तो वह भी मारे खुशी के नाच उठा। इस प्रकार टेलीफोन का जन्म हुआ।

सबसे पहला टेलीफोन सन् 1876 में बना था। उस समय तक यह एक करिश्मा समझा जाता था। लोग उसके माध्यम से बातें करने को तरसते थे। लेकिन आज टेलीफोन से प्रत्येक व्यक्ति बातें कर सकता है। जो भी चाहे इसे अपने घर में या आफिस में लगवा सकता है। न कहीं जाने जरूरत, न किसी को बुलाने की। नंबर मिलाइए और जिसके पास टेलीफोन हो, उससे बातें कीजिए।

बहुत से लोग समझते हैं कि टेलीफोन उसी बिजली की मदद से काम करता है जो घरों में प्रकाश करने मे काम आती है। यह गलत है। टेलीफोन का घरेलू बिजली से कोई संबंध नहीं होता। इसको चलाने के लिए एक खास किस्म की बिजली की बैटरी काम में लाई जाती है जिस में 'करेंट' तो होता है, मगर वह हानि नहीं पहुंचाता। यदि कारण है कि टेलीफोन का नंगा तार हाथ से छू जाने पर तेज झटका नहीं मारता।

टेलीफोन के मुख्य भाग दो होते हैं। एक होता है बोलने और सुनने का यंत्र। उसके जिस सिरे को मुंह पर लगाकर बोला जाता है उसे 'माइक' कहते हैं। दूसरे सिरे को, जो कान से लगाया जाता है, 'रिसीवर' कहते हैं।

दूसरा भाग टेलीफोन की मशीन होता है, जिससे नंबर मिलाए जाते हैं।

जब हम किसी को टेलीफोन करते हैं तो माइक हमारी आवाज को बिजली की तरंगों में बदल देता है। ये तरंगें जब दूसरे व्यक्ति के रिसीवर में पहुंचती हैं तो फिर आवाज में बदल जाती हैं।

आवाज को बिजली की तरंगों में और बिजली की तरंगों को आवाज में बदलने का काम टेलीफोन के माइक और रिसीवर में लगी धातु की एक बहुत पतली पट्टी करती हैं उसे 'डायाफ्राम' कहते हैं।

जब डायाफ्राम से हमारी आवाज टकराती है तो वह थरथराने लगता है। इस थरथराहट से उसमें दौड़ता करेंट भी तेज-मंदा होता है। यही तेज-मंदा होता करेंट जब दूसरे व्यक्ति के रिसीवर में लगे डायफ्राम में पहुंचता है तो उसमें भी पहले जैसी थरथराहट होती है और हम आवाज सुनते हैं।

टेलीफोन आज देश का महत्वपूर्ण संचार साधन है। उस के द्वारा कोई भी अच्छी-बुरी खबर कुछ ही देर में देश के किसी भी भाग में पहुंचाई जा सकती है। आवश्यकता पड़ने पर सैकड़ों किलोमीटर दूर बैठे आत्मीयजन या अन्य किसी से बातें की जा सकती हैं।

अपने देश में ही नहीं, आप टेलीफोन से दुनिया के किसी भी हिस्से में बैठे अपने मित्र से बातें कर सकते हैं। आज तो ऐसे टेलीफोन भी बन गए है जो बिना तार के ही काम करते है। इन्हें सैलूअर फोन कहते हैं। रेल, मोटर, हवाई जहाज यहां तक कि जंगल से भी इन फोनों से बात की जा सकती है। यह एक छोटी सी बैटरी से चलाए जाते हैं।

जिसमें आवाज बंद है : ग्रामोफोन

काफी दिन पहले की बात है। टेलीफोन बन चुका था। वैज्ञानिकों को यह बात मालूम हो चुकी थी कि आवाज को बिजली की तरंगों में बदला जा सकता है। अचानक एक अमरीकन वैज्ञानिक ने सोचा कि जब आवाज को बिजली की तरंगों में बदला जा सकता है तो क्या उसे किसी नरम चीज पर नहीं उतारा जा सकता।

'सचमुच यह बात बड़े मजे की होगी'–उसने सोचा–'अगर आवाज को किसी चीज पर उतारा जा सका, तो जब चाहे उसे फिर सुना जा सकता है।'

बस, वह आवाज को किसी नरम चीज पर उतारने में जुट गया। यह तो वह जानता था कि जब आवाज किसी चीज से टकराती है तो थरथराहट पैदा होती है। अत: उसने 'माइक' का एक मॉडल तैयार किया और उसके डायाफ्राम के बीच में तेज नोक वाली एक सुई लगा दी।

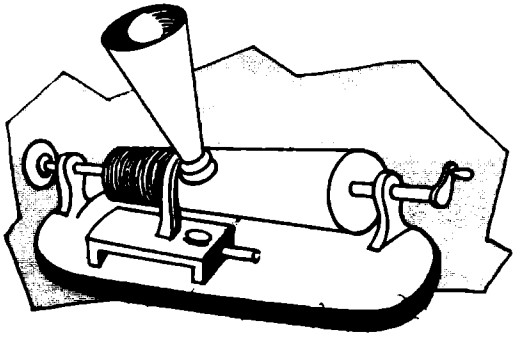

संसार का पहला ग्रामोफोन

अब उसने उस सारे यंत्र को इस तरह से फिट कर दिया कि सुई की नोक मोम से बने एक गोल डंडे को छूती रहे। इतना कर लेने के बाद उसने माइक में बोलना शुरू किया। उसके बोलने से डायाफ्राम में थरथराहट होने लगी। सुई मोम के डंडे पर हिलने लगी।

फिर उस डंडे को धीरे धीरे गोलाई में घुमाकर सुई की सारी थरथराहट उस

पर उतार ली। मोम नरम था, इसलिए सुई ने उस पर बहुत सी टेढ़ी-मेढ़ी लाइनें बना दी थीं।

फिर उसने मोम के डंडे को ठंडा करके सख्त बना लिया। अब उस ने पहली सुई द्वारा बनाई गयी लाइनों में दूसरी सुई गुजारी। दूसरी सुई रिसीवर पर लगी थी।

उसे इस काम में बड़ी सफलता मिली। रिसीवर से उसकी साफ आवाज आ रही थी। उस आविष्कारक का नाम टामस अल्वा एडीसन था।

मोम के डंडे का स्थान शीघ्र ही प्लास्टिक जैसी अन्य धातुओं से बनी प्लेटों ने ले लिया। तब ग्रामोफोन संसार के सामने आया।

पहला ग्रामोफोन बड़ा बेढंगा और विचित्र था। रिकार्ड गोल डंडों के बनते थे और उन्हें हाथ से घुमाया जाता था, किंतु शीघ्र ही उसका सुधारा हुआ रूप भी बना लिया गया।

आवाज भरने के इस आविष्कार ने संसार में हलचल मचा दी। बोलने वाली मशीन को दिखाने के लिए अमेरिका में बाकायदा एक नुमाइश हुई। उसमें दुनिया के कोने कोने से लोग पहुंचे।

आवाज भरने के साधनों का तेजी के साथ विकास हुआ। जिस सिनेमा में अब तक गूंगी तसवीरें दिखाई जाती थीं, आवाज के इस नये जादू की सहायता से उसे बोलता हुआ बना दिया गया।

सिनेमा की फिल्म के एक सिरे पर जो सफेद सफेद लकीरें दिखाई देती हैं, उनमें ही आवाज कैद होती है। फिल्म घूमने के साथ साथ इन पर एक खास किस्म की रोशनी डाली जाती है, जिसने वह आवाज किरणों में बदल जाती है और एक खास यंत्र से टकराकर आवाज पैदा करती है। उसी आवाज को हम फिल्म देखने के साथ साथ सुनते हैं।

रिकार्डों के साथ साथ आवाज की फिल्में भी होती हैं। उनमें एक छोटी-सी मशीन की सहायता से जब चाहे बिना किसी झंझट के, कहीं भी और किसी की भी आवाज भरी जा सकती है। आवाज भरने की इस मशीन को 'टेप रिकार्डर' कहते हैं। रिकार्ड बनाने का काम तो केवल स्टूडियों में ही हो सकता है।

ग्रामोफोन के इस आविष्कार ने मानव-जाति को बहुत कुछ दिया है। कल तक जिन प्रिय नेताओं, स्वजनों और मित्रों के फोटो ही उनके बाद उनकी याद दिलाते थे, अब उनकी आवाज को भी सदा सदा के लिए हम सुन सकते हैं।

इसके साथ ही साथ नेताओं के भाषण और मनचाहे गीत भी जब चाहे ग्रामोफोन पर अपनी मर्जी से सुने जा सकते हैं।

एक जमाना था, जब आवाज और गाने आदि तवे जैसे रिकार्ड में भरे होते थे। परन्तु आज विकास के नये दौर में टेप पर गाने और आवाज रिकार्ड कर कैसेट बनाये जाते हैं। ये कैसेट रेडियो या 'टेप प्लेयर' जैसे किसी यंत्र द्वारा सुने जाते हैं।

आज तो ऐसे कैमरे भी बन गए हैं जिनमें सामने वाले का चित्र, हंसना-बोलना व उसकी हर हरकत कैद हो जाती है जिसे हम सी.डी. के जरिये अपने टेलीविजन स्क्रीन पर देखते और सुनते हैं।

हवा का जादू : वायरलेस, रेडियो

अभी तक आवाज को केवल तार की सहायता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जा सकता था। इस काम के लिए बड़े बड़े खंभों पर तार लगाए जाते हैं जो सड़कों या रेल की पटरियों के किनारे लगे होते हैं।

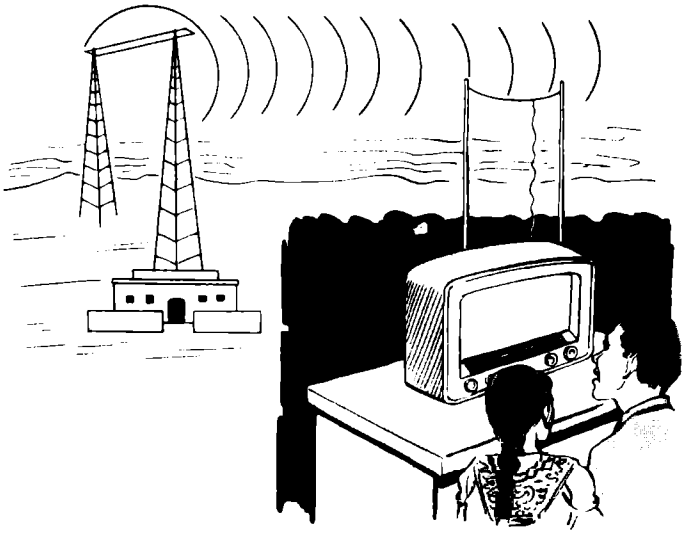

सन् 1863 में एक स्टाक क्लर्क मेक्सवैल ने सबसे पहले यह बताया कि आवाज को बिना तार के भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जा सकता है। उसका कहना था कि जिस प्रकार पानी में कंकड़ डालने से अनगिनत लहरें पैदा होकर दूर दूर तक फैल जाती हैं, उसी प्रकार आवाज से भी हवा में लहरें पैदा होती हैं। वे लहरें एक दूसरी को ढकेलती हुई दूर तक चली जाती हैं।

इसके तीस-पैंतीस वर्ष बाद अचानक लोगों ने सुना कि मारकोनी ने एक ऐसी मशीन बनाई है, जो बिना किसी तार के आकाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेज देती है।

मारकोनी सचमुच ऐसी मशीन बनाने में सफल हो गया था। उसकी पहली मशीन आवाज को बिजली की लहरों में बदलकर, हवा में ढकेल देती थी। दूसरी मशीन से वह उन लहरों को पकड़कर वैसी ही आवाज में बदल देता था।

पहले-पहले इन लहरों के आने-जाने की दूरी बहुत कम थी। उसने फिर प्रयोग किए, मशीन में अनेक सुधार किए। अंत में सन् 1900 में वह उस मशीन से अंध महासागर पार अमेरिका तक आवाज भेजने में सफल हो गया।

मारकोनी के इस आश्चर्यजनक आविष्कार की खबर पाकर तमाम संसार चकित रह गया। इस मशीन का प्रचार तेजी से हुआ। पहले समुद्री जहाजों में कोई ऐसा उपाय न था, जिससे वे खतरे की सूचना दूर के स्टेशनों तक भेज सकें और मदद मांग सकें। इस आविष्कार को तुरंत जहाजों में लगाया गया और खतरे की सूचनाएं सही ढंग से प्राप्त की जाने लगीं।

अब वैज्ञानिक और आगे बढ़ने की तरकीबें सोचने लगे। उनके सामने सवाल था-क्या इस तरह की मशीन से आदमी की आवाज भी बिना किसी तार के दूर दूर तक भेजी और सुनी जा सकती है?

प्रयोग पर प्रयोग होने लगे। विश्व के कई वैज्ञानिक रात-दिन आदमी की आवाज को हवा में फेंककर, उसे फिर से पकड़कर सुनने की कोशिशों में लगे।

कहावत है, मेहनत कभी बेकार नहीं जाती। आखिकार वैज्ञानिक अपनी कोशिशों में सफल हुए। वायरलेस वाल्व बना और आदमी की आवाज भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजी जाने लगी।

वायरलेस के इन्हीं सिद्धांतों पर सन् 1922 में रेडियो का आविष्कार हुआ, जो आपका और घर भर का मनोरंजन करता है। आपको ताज़ी खबरें देता है, गाने सुनाता है और अच्छी अच्छी बातें बताता है।

इस काम में दो चीजें प्रमुख रूप से काम करती हैं। पहली चीज है रेडियो स्टेशन, जहां से आवाज या कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। और दूसरी, आपका रेडियो सेट जो प्रसारित किए गए कार्यक्रमों को हवा से पकड़कर उन्हें आवाज में बदलता है।

आपने देखा होगा कि रेडियो स्टेशन पर कई ऊंचे ऊंचे खंभे लगे होते हैं। असल में इन्हीं खंभों के द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों की आवाजें बिजली की तरंगों में बदलकर चारों ओर फेंकी जाती हैं।

इन तरंगों को आपके रेडियो का एरियल हवा से पकड़कर रेडियो की मशीन तक ले जाता है। रेडियो की मशीन इनको तेज करके लाउड-स्पीकर में लगे डायाफ्राम से टकराने देती है।

जब ये तरंगें डायाफ्राम से टकराती हैं तो फिर से आवाज में बदल जाती हैं और आप गीत-संगीत सुनते हैं।

रेडियो स्टेशन से कार्यक्रमों की आवाज को बिजली की तरंगों में बदलकर आकाश में फेंकने के लिए बड़ी बड़ी मशीनें होती हैं। कार्यक्रमों के लिए ऐसे स्टूडियो होते हैं, जिनमें न बाहर की आवाज अंदर आ पाती है, न अंदर की आवाज बाहर जा पाती है।

संसार में अनेक रेडियो स्टेशन हैं, जिनसे प्रत्येक क्षण कोई न कोई कार्यक्रम प्रसारित होता रहता है। मनचाहे स्टेशन का कार्यक्रम सुनने के लिए प्रत्येक रेडियो में नंबरों की एक प्लेट लगी होती है, जिस पर एक सुई लगी रहती है।

आप जिस स्टेशन का कार्यक्रम सुनना चाहें, उसके नंबर पर सुई को घुमाकर लगा दें। ऐसा करने से आपका एरियल उन्हीं तरंगों को पकड़ेगा जो उस नंबर के स्टेशन से प्रसाति की जा रही होंगी।

आज के समय में रेडियो सभी के लिए आवश्यक बन गया है। छोटे से छोटे रेडियो से लेकर बड़े से बड़ा रेडियो आप खरीद सकते हैं। चाहे आप कहीं हों, घर पर हों या सफर में, रेल में हो या हवाई जहाज में, रेडियो हर जगह आपका मनोरंजन करता है।

मनोरंजन के साथ साथ रेडियो अब शिक्षा का साधन भी बनता जा रहा है। भारत में रेडियो से संगीत की, प्रादेशिक भाषाओं की और उद्योग-धंधों की शिक्षा के साथ साथ खेती-बाड़ी, साहित्य, खेल, राजनीति आदि विषयों पर भी बहुत सी अच्छी अच्छी बातें बताई जाती हैं।

रेडियो का दूसरा रूप ट्रांजिस्टर है जिसमें बैटरी की सैल डाली जाती हैं। इसे हम जंगल में लेजाकर भी बजा सकते हैं। टेलीविजन भी रेडियो की तरह आवाज करता है। अन्तर यह है कि रेडियो पर बोलने वाले का चित्र नहीं आता जबकि टेलीविजन पर बोलने वाले की हर हरकत और आवाज एक साथ आती हैं। हजारों-लाखों किलोमीटर दूर की भी घटना होते हुए हम टेलीविजन पर उसी समय देखते हैं। उसमें वहां का दृश्य और आवाज दोनों एक साथ आती हैं।
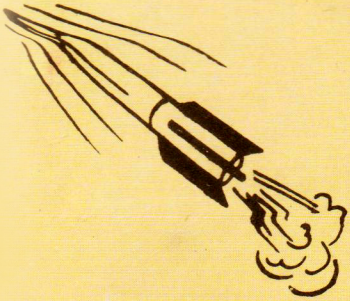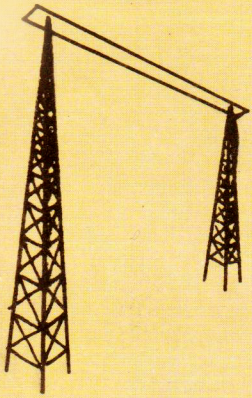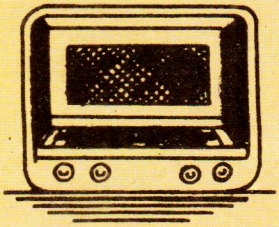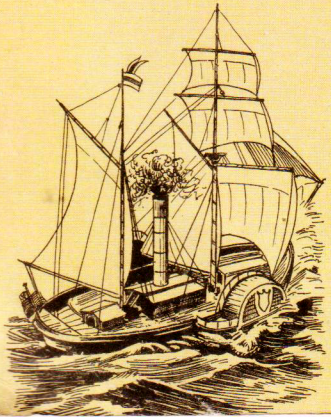
●●